Gyanvividha, Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025 : PP-145-148

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025
Page No.- 145-148
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

1. डॉ. जयवीर सिंह फर्स्वाण
असि. प्रोफेसर इतिहास,
बालगंगा महाविद्यालय,
सेन्दुल (केमर), टिहरी गढ़वाल.

2. डॉ. कृष्णचंद्र
असि. प्रोफेसर, चित्रकला,
बालगंगा महाविद्यालय,
सेन्दुल (केमर), टिहरी गढ़वाल.

Corresponding Author :

डॉ. जयवीर सिंह फर्स्वाण
असि. प्रोफेसर इतिहास,
बालगंगा महाविद्यालय,
सेन्दुल (केमर), टिहरी गढ़वाल.

प्राचीन भारतीय समाज में प्रचलित सोलह संस्कार

सारांश : प्राचीन काल से भारत को विश्व गुरु माना जाता था। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। हमारी प्राचीन संस्कृति अनेक प्रकार के प्रतीकों एवं अनुष्ठानों के लिए जानी जाती है। भारतीय संस्कृति की कहानी एकता, समाधानों के समन्वय एवं प्राचीन परम्पराओं के पूर्ण सहयोग तथा उन्नति की कहानी है। प्राचीनता, आध्यात्मिकता, समन्वयशीलता, बहुदेववाद, धर्म एवं कर्म की प्रधानता, सहिष्णुता तथा वर्णाश्रम व्यवस्था हमारी संस्कृति की विशेषता रही है। शिक्षा, साहित्य एवं विज्ञान के क्षेत्रों में भी इस काल में काफी प्रगति हुई। हमारे ऋषि मुनियों एवं मनीषियों द्वारा वेदों, पुराणों ज्योतिष एवं अनेक ग्रन्थों की रचनायें ईसा पूर्व में ही कर ली गयी थी। वर्णाश्रम व्यवस्था व संस्कार हमारी भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं। संस्कारों का उल्लेख सबसे पहले गृहसूत्रों में मिलता है। इनकी संख्या सोलह बताई गयी है। संस्कार शब्द का तात्पर्य शुद्धिकरण से और गृहस्थ धर्म का आधार संस्कारों को ही बनाया गया था। प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति, साहित्य एवं ज्ञान परम्परा से प्रभावित होकर विभिन्न देशों के विद्यार्थी ज्ञान प्राप्ति हेतु भारत आते थे। वर्तमान भारतीय समाज की बात करें तो लोग इन संस्कारों के सामाजिक एवं धार्मिक महत्व को भूल गये हैं और अब ये संस्कार एक परम्परा मात्र रह गये हैं। इसके विपरीत प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं से प्रभावित होकर विभिन्न देशों के लोग भारत आते हैं और कई लोग तो यहां की परम्परायें अपनाने लग गये हैं।

परिचय-संस्कार शब्द का अर्थ 'शुद्धीकरण' है। मूलतः संस्कार का अभिप्राय उन धार्मिक कृत्यों से हैं जो किसी व्यक्ति को अपने समुदाय का पूर्ण रूप से योग्य सदस्य बनाने के उद्देश्य से उनके शरीर, मन और मस्तिष्क को पवित्र करने के लिए किए जाते हैं, किन्तु हिन्दू संस्कारों का

उद्देश्य व्यक्ति में अभीष्ट गुणों को जन्म देना है। गृहसूत्रों में सबसे पहले संस्कारों का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद तथा परवर्ती साहित्यों में संस्कारों का उल्लेख नहीं मिलता है। गृहसूत्रों में संस्कारों के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि इनके द्वारा ऋषि-मुनियों एवं विचारकों ने गृहस्थ के जीवन का नियमन करने का कार्य किया था। संस्कारों का उद्देश्य पारिवारिक जीवन में व्यक्ति को जन्म से मृत्यु तक कल्याणकारी प्रभाव का सृजन करना था। प्राचीन भारतीय मनीशियों एवं विचारकों ने मानव जीवन के विकास के लिए मानसिक संकल्पों और विचारों को महत्वपूर्ण ठहराया है। इस देश में जीवन के विकास के क्रम में मनोविचारों की विकासमयी परम्परा का ध्यान रखा गया है।

ऋग्वेद में संस्कारों का उल्लेख नहीं मिलता है, लेकिन इस ग्रन्थ के कुछ सूक्तों में गर्भाधान, विवाह तथा अंत्येष्टि से सम्बन्धित कुछ धार्मिक कृत्यों का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद में गर्भाधान, विवाह तथा अंत्येष्टि संस्कारों के बारे में कुछ विस्तार से वर्णन मिलता है। गोपथ और शतपथ ब्राहमणों में उपनयन और गोदान संस्कारों में होने वाले धार्मिक कृत्यों का उल्लेख मिलता है। गृहसूत्रों में ही संस्कारों के नियमों का पूरा विवरण मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इससे पहले पारम्परिक प्रथाओं के आधार पर ही संस्कार होते थे। गृहसूत्रों में सबसे पहले विवाह संस्कार का वर्णन मिलता है और इसके बाद अन्य संस्कारों का उल्लेख मिलता है। अधिकतर गृहसूत्रों में अंत्येष्टि संस्कार का वर्णन नहीं मिलता है क्योंकि ऐसा करना अशुभ माना जाता था। संस्कारों का अभिप्राय उन धार्मिक कृत्यों से था जो किसी व्यक्ति को अपने समुदाय का पूर्ण रूप से योग्य सदस्य बनाने के उद्देश्य से उनके शरीर, मन और मस्तिष्क को पवित्र करने के लिए किये जाते थे।

मनु और याज्ञवलक्य के अनुसार संस्कारों से दिलों के गर्भ और बीज के दोषादि की शुद्धि होती है। कुछ ग्रन्थों में यह भी उल्लेख मिलता है कि मनुष्य दो प्रकार से योग्य बनता है, पूर्व कर्म के दोषों को दूर करने से और नये गुणों के उत्पादन से। संस्कार में दोनों ही काम करते हैं। मनु ने भी संस्कारों का वर्णन किया हैं मनुस्मृति में कहा गया है कि संस्कारों के द्वारा मनुष्यों की अशुद्धियों का नाश होता है, उसका शरीर पवित्र होता है। सूत्रों तथा स्मृतियों में संस्कारों की संख्या अलग-अलग दी गयी है। गौतम धर्म सूत्र में संस्कारों की संख्या चालीस मिलती है। कालान्तर में सोलह संस्कारों को स्वीकार किया गया है- गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह और अंत्येष्टि ।

संस्कारों का उद्देश्य-प्राचीन भारतीय समाज में प्रचलित संस्कारों की बात करें तो इन संस्कारों को गृहस्थ धर्म का आधार बनाया गया था। इन संस्कारों को सम्पन्न कराने का एकाधिकार केवल ब्राहमण पुरोहितों के पास था। प्रत्येक संस्कार के नियमों तथा रीतियों का पालन करते हुए ब्राहमण पुरोहित दक्षिणा प्राप्त करता था। मानव जीवन को संस्कारों के माध्यम से समुन्नत करना, उच्च आदर्शों का समावेश करना, गृहस्थ जीवन में सामाजिक, धार्मिक भावनाओं का समावेश करना प्राचीन ऋशियों का उद्देश्य था। यह महत्वपूर्ण है कि संस्कारों के साथ यज्ञों को भी समाहित किया गया है। जन्म के मृत्युपर्यन्त प्रत्येक गृहस्थ को संस्कारों के साथ तथा उनके पृथक रूप से भी अनेक प्रकार के यज्ञ करने होते थे। वस्तुतः प्रत्येक संस्कार एक यज्ञ था। संस्कार हिन्दू धर्म के प्रमुख आधारों में एक है।

प्राचीन भारतीय साहित्यों में संस्कारों का जो उल्लेख मिलता है, उसके मुख्यतः दो प्रमुख उद्देश्य थे। पहला उद्देश्य प्रकृति में विरोधी शक्तियों के प्रभाव को दूर करना और हितकारी शक्तियों को अपनी ओर आकर्शित करना था, क्योंकि प्राचीन हिन्दुओं का भी अन्य प्राचीन जातियों की भांति यह विश्वास था कि मनुष्य कुछ अधिमानव प्रभावों से घिरा हुआ है। इस प्रकार वह बुरे प्रभाव को दूर करके और अच्छे प्रभाव को आकर्शित करके देवताओं और इन अधिमानव

शक्तियों की सहायता से सुखी और समृद्धि रहेगा। दूसरा उद्देश्य सांस्कृतिक था। मनु के अनुसा मनुष्य संस्कारों के द्वारा इस संसार के और परलोक के जीवन को पवित्र करता है। इसी प्रकार के विचार याज्ञवलक्य के द्वारा भी प्रकट किये गये हैं। प्राचीन भारतीयों का विश्वास था कि प्रत्येक मनुष्य जन्म से शुद्ध उत्पन्न होता है और उसे आर्य बनने से पूर्व शुद्धि या संस्कार की आवश्यकता होती है। इसी उद्देश्य से उपनयन संस्कार किया जाता था। संस्कारों का उद्देश्य मनुष्य का नैतिक उत्थान और उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करके जीवन के अन्तिम मोक्ष तक पहुंचने के योग्य बनाना था।

संस्कार वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्म दोनों के अभिन्न भाग थे। वर्ण-धर्म का उद्देश्य व्यक्ति के कार्यों को समाज के हित को ध्यान में रखकर नियोजित करना था। आश्रम-धर्म का भी यही उद्देश्य है किन्तु इसमें प्रमुख रुप से व्यक्ति के हित को ध्यान में रखा जाता था। इन दोनों दृष्टिकोणों को मिलाने वाली कड़ी संस्कार है। संस्कारों के द्वारा व्यक्ति अधिक संगठित और अनुशासित होकर एक चरण से दूसरे चरण में प्रवेश करता है। संस्कार के समय जो धार्मिक क्रियाएं की जाती हैं वे व्यक्ति को इस बात की अनुभूति कराती हैं कि उसके जीवन में इस संस्कार के बाद कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन होने जा रहा है। संस्कारों के समय की जाने वाली धार्मिक क्रियाएं व्यक्ति को इस बात की अनुभूति कराती थी कि अब उसके ऊपर कुछ नयी जिम्मेदारियां आ रही हैं, जिन्हें पूरा करके ही वह समाज की और अपनी दोनों की उन्नति कर सकता है। इस प्रकार संस्कार पूर्वजन्म के दोषों को दूर करके और गुणों का विकास करने में सहायक होकर व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करके व्यक्ति और समाज दोनों की उन्नति में सहायक होते थे। इसलिए प्राचीन भारत में संस्कारों का इतना महत्व था।

संस्कारों के प्रकार : संस्कार शब्द का अर्थ है शुद्धिकरण। गृहसूत्रों में सबसे पहले संस्कारों का उल्लेख मिलता है। गौतम धर्मसूत्र में संस्कारों की संख्या चालीस लिखी गयी है। सूत्रों तथा स्मृतियों में संस्कारों की संख्या अलग-अलग दी गयी है, किन्तु इनमें से सोलह संस्कारों को ही स्वीकार किया गया है। ये संस्कार निम्नलिखित हैं-

1. गर्भाधान संस्कार-इस संस्कार में एक मंत्र का पाठ किया जाता है जिसका भावार्थ है कि जिस प्रकार पृथ्वी अनेक रत्न उत्पन्न करती है उसी प्रकार यह स्त्री में भी ऐश्वर्य के लिए पुत्र उत्पन्न करे। धर्मशास्त्रों में जिन दिनों गर्भाधान करना चाहिए उसका विवरण भी मिलता है। गर्भाधान का उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति माना गया है और इसके लिए मनु और याज्ञवलक्य ने विस्तृत नियमों की स्थापना की है। इसमें पुत्र कामना को अधिक महत्व दिया गया है।

2. पुंसवन संस्कार-गर्भाधान के तीन महीने बाद यह संस्कार सम्पन्न किया जाता था। इस समय शिशु के शरीर की रचना आरम्भ होती है। इस संस्कार का उद्देश्य पुत्र कामना था और देवताओं से प्रार्थना की जाती थी कि गर्भस्थ शिशु की रक्षा करना।

3. सीमन्तोन्नयन संस्कार-विभिन्न गृहसूत्रों के अनुसार यह संस्कार गर्भवती होने के बाद चौथे, छठे या आठवें महीने में किया जाता था। इस संस्कार का उद्देश्य गर्भस्थ शिशु की रक्षा था। इसमें भी यज्ञों द्वारा देवताओं को प्रसन्न किया जाता था।

4. जातकर्म संस्कार-इस संस्कार में पिता समाज को बालक के जन्म की सूचना देता है और कहता है कि हे बालक मैं तुझको ईश्वर का बनाया हुआ घृत और शहद चटता हूं जिससे कि तू विद्वानों द्वारा सुरक्षित होकर इस लोक में सौ वर्श तक धर्मपूरक जीवन व्यतीत करे।

5. नामकरण संस्कार-शिशु के जन्म के दसवें या बारहवें दिन यह संस्कार किया जाता था। इस संस्कार का उत्सव सामूहिक रुप से मनाया जाता था। सबसे पहले देवताओं की स्तुति के लिये होम किया जाता था। इसके बाद शिशु का नाम रखा जाता था और उसकी कलाई पर सोने का एक टुकड़ा बांधा जाता था।

6. निष्क्रमण संस्कार-जब शिशु लगभग चार मास का हो जाता तो उसे घर के बाहर लाते थे, इसी को निष्क्रमण संस्कार कहा जाता था। इससे पहले वह इतना असमर्थ होता था कि बाहर की धूप और वायु की प्रखरता को सहन नहीं कर सकता था।

7. अन्नप्राशन संस्कार-यह संस्कार बालक के जन्म के छठे माह में किया जाता था, जिसमें बालक को प्रथम बार पका हुआ अन्न खिलाया जाता था।

8. चूड़ाकर्म संस्कार-इस संस्कार के समय पिता एक मंत्र का उच्चारण कर यह प्रार्थना करता है कि अच्छा छुरा बालक के केशों को काटे जिससे कि उसके सिर में कोई रोग न हो और ईश्वर उसे दीर्घायु करे। चूड़ाकर्म के लिए तीसरे या पांचवें वर्श को उपयुक्त माना गया है।

9. उपनयन संस्कार-उपनयन का शाब्दिक अर्थ है बालक को गुरु के पास ले जाना। गृहसूत्रों के अनुसार ब्राहमण बालक का उपनयन संस्कार आठ वर्श की, क्षत्रिय का ग्यारह वर्श की और वैश्य का बारह वर्श की उम्र में किया जाता था।

10. वेदारम्भ संस्कार-इस संस्कार के द्वारा विद्यार्थी की वेदों के प्रति अभिरूचि उत्पन्न की जाती थी। वह चारों वेदों का अध्ययन करने का व्रत लेता था। यह अध्ययन गायत्री की शिक्षा के साथ प्रारम्भ होता था।

11. समावर्तन संस्कार-विद्या समाप्ति के बाद यह संस्कार होता था। इस समय शिश्य प्रार्थना करता है कि समस्त संसार में विद्वानों के बीच मुझे यश और ऐश्वर्य प्राप्त हो। इसके बाद बालक गुरु के घर से अपने पिता के घर आता था।

12. विवाह संस्कार-इस संस्कार के द्वारा व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है और परिवार के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन करता है।

उपरोक्त के अतिरिक्त कर्णवेध, विद्यारम्भ, केशान्त और अंत्येष्टि संस्कारों का वर्णन सूत्रों तथा स्मृतियों में मिलता है। आधुनिक भारतीय समाज में संस्कारों के सन्दर्भ में बात की जाय तो जनसाधारण इनके सामाजिक और धार्मि महत्व को भूल गये हैं। अब संसार एक परम्परा भर रह गये हैं। आज के वैज्ञानिक युग में जीवन की संकल्पना ही बदल गयी है। अब मानव उन अतिमानव शक्तियों में विश्वास नहीं करता है जिनके अशुभ प्रभाव को दूर करने और अच्छे प्रभावों को आकर्शित करने के लिये संस्कार किये जाते थे। एक ओर जहां विदेशी लोग हमारी संस्कृति एवं परम्पराओं से प्रभावित होकर हमारे देश में आते हैं और हमारे कई रीति-रिवाजों को अपना रहे हैं, वहीं दूसरी ओर हम अपनी परम्पराओं को भूलते जा रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. वर्मा, एस.आर.- "इतिहास" पेज नं.-501.
2. वही, पेज नं.-51
3. ओमप्रकाश-"प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास"
4. गोपथ्र ब्राहमण- 1.2. 1-8.
5. तैतिरीय उपनिशद्- 1,11.
6. गौतम गृहसूत्र- 8, 14, 24.
7. उपाध्याय, रामजी- "भारत की प्राचीन संस्कृति" पेज नं.-24.
8. वही, पेज नं.-27.
9. Dutt. R.C.- "History of Civilization in Ancient India".
10. Acharya, P.K.- "Elements of Hindu culture and Sanskrit civilization.

•